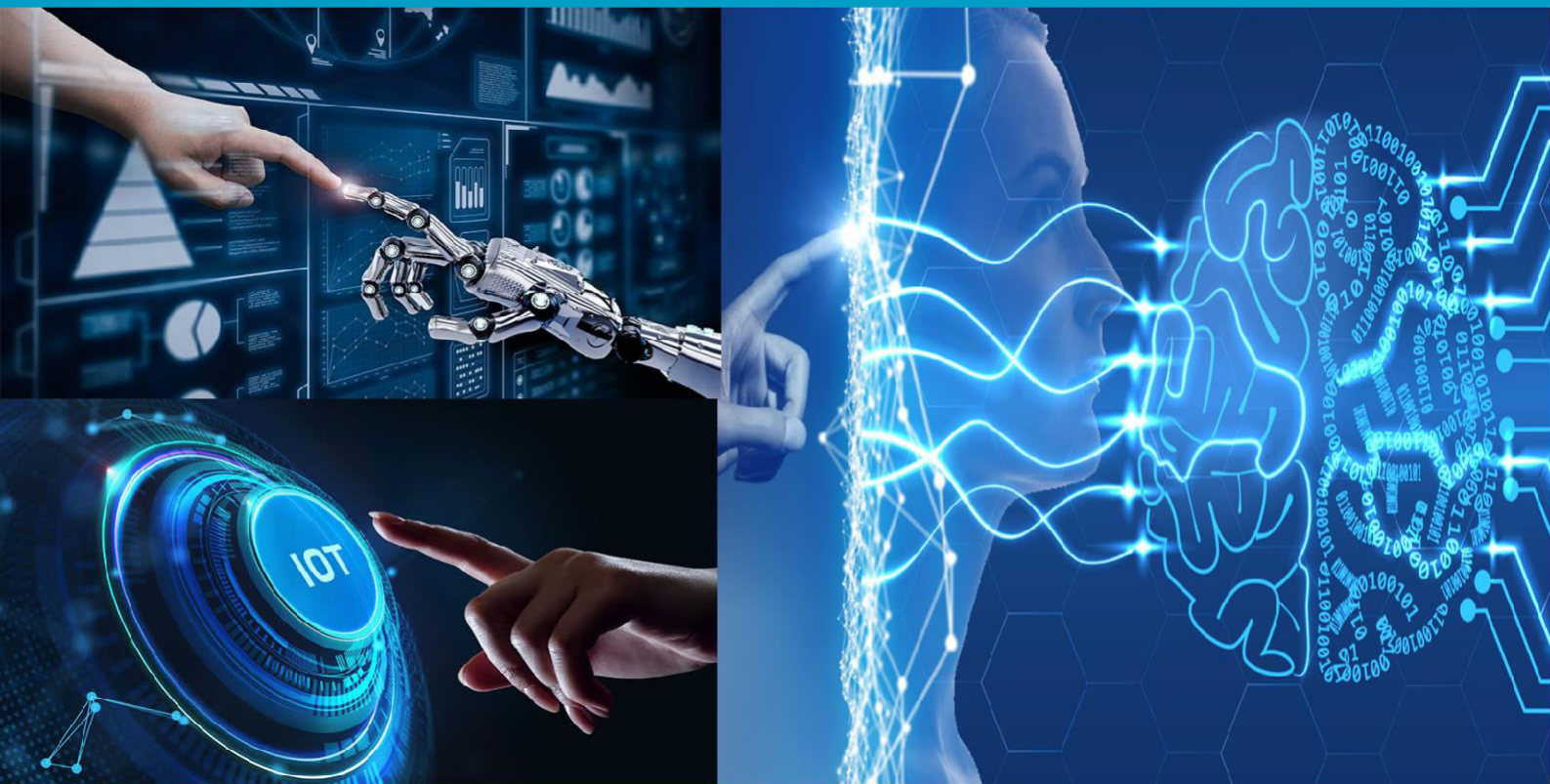




INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 9, Issue 10, October 2022



INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

Impact Factor: 7.580



+91 99405 72462



+9163819 07438



ijmrsetm@gmail.com



www.ijmrsetm.com



भारत में चुनावी राजनीति पर भारी पड़ती जातिवादी मानसिकता : एक अध्ययन

आशा नागर

सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवली (टोंक)

सार

भारत की राजनीति (Indian Politics) संविधान के ढाँचे में काम करती हैं। जहाँ पर राष्ट्रपति सरकार का प्रमुख होता है और प्रधानमंत्री कार्यपालिका का प्रमुख होता है।

भारत एक संघीय संसदीय, लोकतांत्रिक गणतंत्र है, भारत एक द्वि-राजतन्त्र का अनुसरण करता है, अर्थात्, केन्द्र में एक केन्द्रीय सत्ता वाली सरकार और परिधि में राज्य सरकारें।

संविधान में संसद के द्विसदनीयता का प्रावधान है, जिस में एक ऊपरी सदन (राज्य सभा) जो भारतीय संघ के राज्य तथा केन्द्र-शासित प्रदेश का प्रतिनिधित्व करता है, और निचला सदन (लोक सभा) जो भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करता है, सम्मिलित हैं।

शासन एवं सत्ता सरकार के हाथ में होती है। संयुक्त वैधानिक बागडोर कार्यपालिका एवं संसद के दोनो सदनों, लोक सभा एवं राज्य सभा के हाथ में होती है। न्याय मण्डल शासकीय एवं वैधानिक, दोनो से स्वतंत्र होता है।

परिचय

संविधान के अनुसार, भारत एक प्रधान, समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक राज्य है, जहाँ पर विधायिका जनता के द्वारा चुनी जाती है। अमेरिका की तरह, भारत में भी संयुक्त सरकार होती है, लेकिन भारत में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है, जो कि ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली पर आधारित है। बहुमत की स्थिति में न होने पर मुख्यमंत्री न बना पाने की दशा में अथवा विशेष संवैधानिक परिस्थिति के अंतर्गत, केन्द्र सरकार राज्य सरकार को निष्कासित कर सकती है और सीधे संयुक्त शासन लागू कर सकती है, जिसे राष्ट्रपति शासन कहा जाता है। भारत का पूरी राजनीति मंत्रियों के द्वारा निर्धारित होती है। भारत एक लोकतांत्रिक और धार्मिक और सामुदायिक देश है। जहाँ युवाओं में चुनाव का बढ़ा वोट केंद्र भारतीय राजनीति में बना रहता है यहां चुनाव को लोकतांत्रिक पर्व की तरह बनाया जाता है। भारत में राजनीतिक राज्य में नीति करने की तरह है।

भारत की राजनीति ऐसी राजनीति जो आज के समय में लोकतंत्र के सबसे सहि पायदान पर है भारत की राजनीति जिसमें सभी व्यक्ति को समानता अधिकार प्रदान करने के लिए चुनाव होता है और वही हो रहा है भारत की राजनीति बाजार की तरह थी लेकिन वर्तमान सरकार के वजह से अत्यधिक पारदर्शी हो गई है भारत की राजनीति को अलग अलग तरीकों से जैसे बाजार का कोई भी सामान अलग अलग मूल्य से काम नहीं हो सकता था। विशेष लोगों के लिए विशेष छूट और अन्य के लिए कोई भी प्रकार की कटौती नहीं। भारत एक लोकतंत्र देश है लेकिन इस देश में लोकतंत्र का कोई महत्त्व दिखाई नहीं पड़ रहा था, लोकतंत्र को दिखाई देने के लिए एक क्रमबद्ध तरीके से लोकतंत्र चुनाव तब का समय था कि केवल अपने फायदे के लिए जनता को आगे करें जा रहे थे राजनीति पूरी तरह से भारत में नाम मात्र का रह चुका था राजनीति नहीं यह तो राज्य नीति है राजनीति का सही अर्थ है राज्य की नीति को कैसे सुचारू रूप से चलाया जाए जो की पहली बार देश में देखने को मिल रहा है।

राजनैतिक दल लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं। यह दल चुनावों में उम्मीदवार उतारते हैं और उन्हें निर्वाचित करवा कर दल के कार्यक्रम लागू करवाने का प्रयास करते हैं। राजनैतिक दलों के सिद्धान्त या लक्ष्य (विज़न) प्रायः लिखित दस्तावेज़ के रूप में होता है।^{[1][2]}



मयंक चौरसिया देवरी विधानसभा क्षेत्र

अभिषेक कुर्मी (मोकला) देवरी विधानसभा क्षेत्र

विभिन्न देशों में राजनीतिक दलों की अलग-अलग स्थिति व व्यवस्था है। कुछ देशों में कोई भी राजनीतिक दल नहीं होता। कहीं एक ही दल सर्वसर्वा (डॉमिनेन्ट) होता है। कहीं मुख्यतः दो दल होते हैं। किन्तु बहुत से देशों में दो से अधिक दल होते हैं। लोकतान्त्रिक राजनैतिक व्यवस्था में राजनैतिक दलों का स्थान केन्द्रीय अवधारणा के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनैतिक दल किसी सामाजिक व्यवस्था में शक्ति के वितरण और सत्ता के आकांक्षी व्यक्तियों एवं समूहों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे परस्पर विरोधी हितों के सारणीकरण, अनुशासन और सामंजस्य का प्रमुख साधन रहे हैं। इस तरह से राजनैतिक दल समाज व्यवस्था के लक्ष्यों, सामाजिक गतिशीलता, सामाजिक परिवर्तनों, परिवर्तनों के अवरोधों और सामाजिक आन्दोलनों से भी सम्बन्धित होते हैं। राजनैतिक दलों का अध्ययन समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री दोनों करते हैं, लेकिन दोनों के दृष्टिकोणों में पर्याप्त अन्तर है। समाजशास्त्री राजनैतिक दल को सामाजिक समूह मानते हैं जबकि राजनीतिज्ञ राजनीतिक दलों को आधुनिक राज्य में सरकार बनाने की एक प्रमुख संस्था के रूप में देखते हैं। Mohit baghel (Rajpur vrindavan mathura) Uttar Pradesh

विशेषताएँ

राजनीतिक दल की संरचना में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य समूह से अलग करती हैं:

- राजनीतिक दल ऐसा संगठन है जिसका प्राथमिक उद्देश्य राजनीतिक नेतृत्व की प्राप्ति होता है। इसमें दल का नेता संगठित अल्पतंत्र (कार्यकारिणी) द्वारा विधायिका पर अधिकार हथियाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है।
- सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को लेकर उप संरचनाएँ एवं समितियाँ होती हैं, जो भौगोलिक सीमाओं, सामाजिक समग्रताओं के आधार पर होती हैं। दल में कई परस्पर विरोधी समूह किसी उद्देश्य तथा राजनीतिक विचारधारा को लेकर साथ जुड़े हुए रहते हैं।
- हर राजनीतिक दल में अल्पतन्त्र होता है। प्रथम अवस्था में शक्ति का केन्द्रीकरण कुछ अनुभवी नेताओं के हाथ में होता है, जो प्रमुख पदाधिकारी होते हैं, जबकि दूसरी अवस्था में दल का संगठन एक विशेष स्तरीकरण व्यवस्था में विभाजित होता है और हर स्तर पर कुछ स्वायत्तता पाई जाती है।
- दल में सदस्यता निरन्तर बनी रहती है। एक सदस्य दूसरे सदस्य को दल की गतिविधियों की जानकारी देते रहते हैं। नए सदस्यों के लिए दल में सदस्यता के द्वार हमेशा खुले रहते हैं। यहीं यह एक खुली संरचना होती है। कुछ लोग दल के सदस्य इसलिए होते हैं कि उन्हें समाज में उसके कारण एक विशेष स्थान मिल जाता है।

उपर्युक्त लक्षणों द्वारा राजनीतिक दल को अन्य संगठन से भिन्न करके देख सकते हैं। राजनीतिक दल का गठन समाज व्यवस्था की दो विशेषताओं द्वारा पाया जाता है:

- राजनीतिक शक्ति का आधार 'वोट' है अर्थात् विधायिका का निर्धारण मतदान प्रणाली से किया जाता है।
- विभिन्न समूहों में शक्ति के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है। अर्थात् राजनीतिक शक्ति को सत्ता हथियाने के लिए परस्पर होड़ हो रही होती है।

संरचना

मौरिस डुवर्जर ने राजनीतिक दल के सामाजिक संगठन का महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इन्होंने दल के संगठन को चार सूत्रीय वर्गीकरण द्वारा समझाने का प्रयास किया है। ये वर्ग निम्नलिखित हैं-

- (१) समिति (कॉकस / Caucus)
- (२) शाखा (ब्रांच / Branch)



- (3) कोष्ठक (सेल / Cell)
- (4) नागरिक सेना (मिलिशिया / Militia)

कॉकस दल के जाने-पहचाने लोगों का एक लघु समूह कहा जा सकता है जो न अपने विस्तार और न ही अपनी भर्ती में रूचि रखता है। वास्तव में यह एक बन्द समूह है। जिसकी प्रकृति अर्द्ध-स्थायी होती है। केवल चुनाव के समय ही कॉकस अधिक सक्रिय होता है तथा चुनावों के बीच के समय में यह निष्क्रिय रहता है। इसके सदस्यों की न्यून संख्या इसकी शक्ति का माप नहीं है क्योंकि इसके सदस्यों का व्यक्तिगत प्रभाव, शक्ति एवं क्षमता उनकी संख्या से काफी अधिक होती है। अतः इसके ख्याति प्राप्त सदस्यों की संख्या की अपेक्षा उनका प्रभाव एवं क्षमता अधिक महत्वपूर्ण है। डुवर्जर ने फ्रांसीसी रैडिकल पार्टी और 1918 से पूर्व की ब्रिटिश लेबर पार्टी को इसका उदाहरण बताया है। मताधिकार के विस्तार के साथ 'कॉकस' प्रकार के दल का हास हो जाता है।

शाखा या ब्रांच दल परिशमी यूरोप में मताधिकार के विस्तार का परिणाम है। इसका सम्बन्ध जनता से होता है तथा कॉकस की तरह यह एक बन्द समूह नहीं है क्योंकि इनमें गुणों की अपेक्षा संख्या को अधिक महत्त्व दिया जाता है। अतः यह अधिक से अधिक सदस्यों की भर्ती में सदैव रूचि रखता है। इनकी राजनीतिक सक्रियताएं केवल चुनाव तक ही सीमित नहीं होती अपितु निरन्तर चलती रहती हैं। ब्रांच कॉकस की अपेक्षा बड़ा समूह है इसलिए इसका संगठन अधिक होता है तथा इसमें कॉकस की अपेक्षा अधिक एकीकरण पाया जाता है। इसमें संस्तरण तथा कर्तव्यों का विभाजन सुस्पष्ट होता है तथा स्थानीयता एवं संकीर्णता का भी आभास पाया जाता है। इसमें अधिकतर केन्द्रीकृत दल संरचना होती है और प्रारम्भिक इकाईयां निर्वाचन क्षेत्रों की ही भांति भौगोलिक आधार पर संगठित होती हैं। यूरोप के समाजवादी दलों में ब्रांच के सभी लक्षण पाये जाते हैं। कैथोलिक और अनुदारवादी दलों ने न्यूनाधिक सफलतापूर्वक इसका अनुसरण किया है। जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी संगठनात्मक आधार पर इस प्रकार के दल का एक अच्छा उदाहरण है।

डुवर्जर द्वारा बताया गया दल संगठन का तीसरा प्रकार कोष्ठक या सेल है जो क्रान्तिकारी साम्यवादी दलों की खोज है। यह ब्रांच की अपेक्षा काफी छोटा समूह होता है तथा इसका आधार भौगोलिक न होकर व्यावसायिक होता है। व्यावसायिक आधार के कारण सेल किसी स्थान पर कार्य करने वाले सभी सदस्यों को एक सूत्र में बाँधना है। कारखाना, वर्कशॉप, दफ्तर एवं प्रशासन आदि इसके अंग हो सकते हैं। चूंकि सेल उन सदस्यों का समूह है जो एक ही व्यवसाय में लगे हुए हैं तथा जो प्रतिदिन कार्य के समय मिलते हैं, इसलिए इसके सदस्यों में दलीय एकात्मकता अधिक होती है। वैयक्तिक सेल का अन्य सेलों से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। सेल का संगठन अनिवार्य रूप से षड्यन्त्रकारी होता है और इसकी निर्माण शैली इस बात का पक्का इन्तजाम करती है कि एक सेल के नष्ट होने पर सम्पूर्ण दल-संरचना संकट में पड़े क्योंकि एक ही स्तर पर पृथक-पृथक इकाइयों के बीच कोई संपर्क नहीं रहता। यह गुप्त सक्रियता के लिए सबसे उपयुक्त माध्यम है। इसकी गुप्त सक्रियताएं मुख्यतः राजनैतिक होती हैं तथा सदस्यों के लिए अधिक महत्वपूर्ण होती हैं। मतों को जीतने, प्रतिनिधियों के समूहन तथा मतदाताओं के प्रतिनिधियों से संपर्क रखने की अपेक्षा सेल दल संघर्ष, प्रचार, अनुशासन तथा अगर अनिवार्य तो गुप्त सक्रियता का एक माध्यम है। इनमें चुनाव जीतने की दूसरे दर्जे के महत्त्व की बात मानने की प्रवृत्ति होती है। प्रजा तांत्रिक केन्द्रवाद की धारणा दल के सभी पहलुओं पर केन्द्रीकृत नियंत्रण स्थापित कर देती है जिसका उदाहरण 1917 से पहले लेनिनवादी दल था। डुवर्जर फ्रांसीसी साम्यवादी दल के सदस्यों में सेल संरचना के प्रति शत्रु भाव होने का भी संकेत करते हैं।

डुवर्जर का दल-संगठन का चौथा प्रकार मिलिशिया प्रकार का संगठन है। यह एक प्रकार की निजी सेना है जिसके सदस्यों को सैनिकों की तरह भर्ती किया जाता है तथा जिन्हें सैनिक संगठन की भांति अनुशासन में रहना और प्रशिक्षण लेना पड़ता है। इसकी संरचना भी सैनिक संरचना के समान होती है अर्थात् इसके सदस्य सेना की तरह टुकड़ियों, कम्पनियों और बटालियनों से संगठित होते हैं। मिलिशिया सेना के अधिक्रमिक लक्षण ग्रहण कर लेती है। मिलिशिया की चुनाव तथा संसदीय गतिविधियों में कोई रूचि नहीं होती क्योंकि यह प्रजातन्त्रीय व्यवस्था को मजबूत करने की अपेक्षा इसे उखाड़ फेंकने का एक मौलिक साधन है। जिस प्रकार सेल एक साम्यवादी खोज है, ठीक उसी प्रकार मिलिशिया क्रान्तिकारियों की खोज है। हिटलर के आक्रामी सैनिक और मुसोलिनी की क्रान्तिकारी मिलिशिया इस प्रकार की संरचना का उदाहरण हैं। इनकी ओर डुवर्जर यह संकेत करते हैं कि केवल मिलिशिया के आधार पर कभी भी कोई राजनीतिक दल नहीं बना है।



राजनीतिक दलों का सामाजिक संगठन

जिस संगठित रूप में राजनीतिक दल आज हमारे सामने विद्यमान हैं, उस रूप में उनका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। उनकी उत्पत्ति उन्नीसवीं शताब्दी में हुई है परन्तु इससे पूर्व भी मनुष्यों द्वारा निर्मित कुछ संगठन, शासन से प्रत्यक्ष न होने पर भी जनमत के निर्माण तथा मांगों को शासकों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। आधुनिक समाज में राजनीतिक दलों का गठन विविध आधारों पर किया गया है।

राजनीतिक दलों के निर्माण में मनोवैज्ञानिक आधार अर्थात् मानव स्वभाव में निहित प्रवृत्तियाँ प्रमुख हैं। मतैक्य एवं संगठन मानव स्वभाव की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। समान स्वभाव एवं मूल्यों वाले व्यक्ति संगठित होकर राजनीतिक दल का निर्माण करते हैं तथा फिर उन मूल्यों को बनाये रखने का प्रयास करते हैं। ब्रिटिश कंज़रवेटिव दल का गठन रूढ़िवादी व्यवस्था को बनाये रखने के समर्थक व्यक्तियों द्वारा किया गया है। कुछ व्यक्ति रूढ़िवादी व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहते हैं तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उदारवादी दलों का निर्माण करते हैं, जबकि कुछ लोग विगत युग की पुनरावृत्ति की आकांक्षा के आधार पर प्रतिक्रियावादी दलों का निर्माण करते हैं।

मानव इतिहास में धर्म की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है तथा आज भी अनेक देशों में धार्मिक नेता एवं पदाधिकारी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनीति में हस्तक्षेप करते हैं। राजनैतिक दलों के सामाजिक संगठन में धर्म प्रमुख भूमिका निभाता है। उदाहरणार्थ भारत में मुस्लिम लीग, अकाली दल, जनसंघ, हिन्दू महासभा जैसे दलों के सामाजिक संगठन में धर्म केन्द्रीय भूमिका निभाता है।

राजनीतिक दलों के निर्माण में क्षेत्रीयता अथवा प्रादेशिकता भी एक प्रमुख आधार है। प्रादेशिक हितों की रक्षा के लिए तथा प्रादेशिक समस्याओं के शीघ्र निपटारे के लिए कुछ प्रादेशिक दलों का निर्माण होता है। भारत में डी0एम0के0, तेलंगाना प्रजा समिति, असम गण परिषद, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा आदि।

राजनीतिक दल आर्थिक या वर्गीय आधारों पर भी संगठित होते हैं। मार्क्स के अनुसार राजनीतिक दलों तथा वर्गों का परस्पर सम्बन्ध राज्य व राजनीति के सिद्धान्त का केन्द्रीय बिन्दु होता है। अनेक अन्वेषणों से हमें यह पता चलता है कि वर्गीय हित, दलीय सम्बद्धताओं तथा निर्वाचनों की पसन्द के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा अधिकांश समाज में राजनीतिक दल निर्वाचक वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्रिटेन में श्रमिक दल, भारत में मजदूर दल, किसान यूनियन आदि।

जाति, भारतीय समाज की आधारभूत विशेषता है। भारत में राजनैतिक दलों के सामाजिक संगठन को जाति हमेशा से प्रभावित करती रही है। स्वतन्त्रता से पूर्व जाति मुक्ति का आन्दोलन राजनैतिक दलों के गठन को प्रभावित करना रहा है। दलित वर्ग कल्याण लीग, बहिष्कृत हितकारिणी सभा, जस्टिस पार्टी इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् निर्वाचन प्रतियोगिता में 'जाति' राजनैतिक गतिशीलता लाने वाला प्रमुख सामाजिक आधार बन गया। 'जातीय संलयन' और 'जातीय विखण्डन' राजनैतिक प्रक्रियाओं में केन्द्रीय भूमिका निभाने लगी। सभी राजनैतिक दल जातीय गणना के आधार पर उम्मीदवारों को तय करने लगे। वर्तमान समय में जातीय आधार पर राजनैतिक दलों के गठन का प्रमुख आधार है। समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, जनता दल यूनाइटेड आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

दलीय संगठन में विचारधारा भी प्रमुख भूमिका निभाती है। समाजवादी, लेनिनवादी और माओवादी विचारधाराओं पर आधारित अनेक दलों का निर्माण भारतीय राजनीति की प्रमुख विशेषता रही।

भारत में राजनैतिक दल

भारत में राजनैतिक दल को संवैधानिक स्वीकृति सन् 1985 में दसवीं अनुसूची के तहत दी गई थी। भारत के राजनैतिक दलों को निम्न आधार पर बाँट सकते हैं-

प्रभावक्षेत्र के आधार पर

- राष्ट्रीय दल- जिनका प्रभाव राष्ट्रव्यापी हो। उदा.- भाजपा, कांग्रेस आदि
- क्षेत्रीय दल- जिनका प्रभाव किसी क्षेत्र/राज्य विशेष पर हो। उदा.- द्रमुक, तेदेपा, बीजद आदि।



विचारधारा के आधार पर

- प्रतिव्यक्तिवादी दल- जो प्राचीन रीतियों से बंधे रहना चाहते हैं, उदाहरणार्थ- भाजपा, शिवसेना आदि
- उदारवादी दल- जो वर्तमान शासन प्रणाली में धीरे-धीरे परिवर्तन करना चाहते हैं, उदा.- कांग्रेस, राकांपा आदि
- विप्लवकारी दल- जो वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था लाना चाहते हैं, उदा.- माकपा, भाकपा आदि।

मान्यता के आधार पर

- मान्यता प्राप्त दल
- पंजीकृत दल

हरेंद्र सिंह तंवर (संयोजक-भारतीय जनता दल)

विचार-विमर्श

कुछ लोग यह सोचते हैं कि मनु ने "मनु स्मृति" में मानव समाज को चार श्रेणियों में विभाजित किया है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। विकास सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक विकास के कारण जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई है। सभ्यता के लंबे और मन्द विकास के कारण जाति प्रथा में कुछ दोष भी आते गए। इसका सबसे बड़ा दोष छुआछूत की भावना है। भारत में इतिहास और धर्म के प्रोफेसर एलेनोर नेस्बिट कहते हैं कि औपनिवेशिक सरकार ने न केवल अपनी जाति जनगणना के माध्यम से, बल्कि 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में कानूनों की एक श्रृंखला के माध्यम से भारत में जाति-संचालित विभाजन को कठोर कर दिया।^{[187] [188]} उदाहरण के लिए, औपनिवेशिक अधिकारियों ने 1900 में भूमि अलगाव अधिनियम और 1913 में पंजाब प्री-एम्पशन अधिनियम जैसे कानून बनाए, जिसमें उन जातियों को सूचीबद्ध किया गया जो कानूनी रूप से भूमि का मालिक हो सकते थे और अन्य जनगणना-निर्धारित जातियों को समकक्ष संपत्ति अधिकारों से वंचित कर दिया। इन अधिनियमों ने भूमि-स्वामी जातियों से किसी भी गैर-कृषि जाति को भूमि के अंतर-पीढ़ीगत और अंतर-पीढ़ीगत हस्तांतरण पर रोक लगा दी, जिससे संपत्ति की आर्थिक गतिशीलता रुक गई और भारत में परिणामी जाति बाधाएं पैदा हो गईं।^{[187] [189]}

खुशवंत सिंह, एक सिख इतिहासकार, और टोनी बैलेंटाइन, इतिहास के प्रोफेसर, कहते हैं कि इन औपनिवेशिक युग के कानूनों ने उत्तर पश्चिम भारत में भूमि-स्वामी और भूमिहीन जातियों के भीतर बाधाएं पैदा करने और खड़ी करने में मदद की।^{[189] [190]} औपनिवेशिक राज्य द्वारा जाति-आधारित भेदभाव और मानवाधिकारों से इनकार का भारत में अन्यत्र समान प्रभाव पड़ा।^{[191] [192] [193]}

सामाजिक स्तरीकरण, और इसके साथ आने वाली असमानता, भारत में अभी भी मौजूद है,^{[208] [209]} और इसकी पूरी तरह से आलोचना की गई है।^[210] सरकारी नीतियों का उद्देश्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण, कोटा द्वारा इस असमानता को कम करना है, लेकिन समाजशास्त्री अरविंद शाह के अनुसार विरोधाभासी रूप से इस स्तरीकरण को जीवित रखने के लिए एक प्रोत्साहन भी बनाया गया है।^[211] भारत सरकार आधिकारिक तौर पर भारत के ऐतिहासिक रूप से भेदभाव वाले समुदायों जैसे कि अनुसूचित जाति के पदनाम के तहत अछूतों और कुछ आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में मान्यता देती है।^{[212] [213]}

हालाँकि, अन्य लोगों का मानना है कि सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों पर ऊंची जातियों के सदस्यों के एकाधिकार को रोकने के लिए जाति के आधार पर आरक्षण आवश्यक है।^[214] ये व्यक्ति यह भी बताते हैं कि भारत में आरक्षण का उद्देश्य मुख्य रूप से गरीबी उन्मूलन नहीं है, बल्कि सभी जाति समूहों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है।^[215]

भारत के संविधान का अनुच्छेद 15 जाति के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है और अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता की प्रथा को अवैध घोषित करता है।^[236] 1955 में, भारत ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम लागू किया (1976 में इसका नाम बदलकर नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम कर दिया गया)। इसने कानून की पहुंच को इरादे से लेकर अनिवार्य प्रवर्तन तक बढ़ाया। भारत में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 में पारित किया गया था।^[237]



- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की सामाजिक-आर्थिक प्रगति की जांच, निगरानी, सलाह और मूल्यांकन करने के लिए की गई थी।^[238]
- अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में वर्गीकृत लोगों के लिए आरक्षण प्रणाली 50 वर्षों से अधिक समय से मौजूद है। भारत में निजी स्वामित्व वाले मुक्त बाज़ार निगमों की उपस्थिति सीमित है और सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियाँ इसकी अर्थव्यवस्था में नौकरियों के प्रतिशत पर हावी रही हैं। 2000 की एक रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया था कि भारत में अधिकांश नौकरियाँ सरकार या सरकार की एजेंसियों के स्वामित्व वाली कंपनियों में थीं।^[239] भारत द्वारा 50 वर्षों से लागू की गई आरक्षण प्रणाली आंशिक रूप से सफल रही है, क्योंकि 1995 में देश भर में सभी नौकरियों में से 17.2 प्रतिशत नौकरियों पर सबसे निचली जाति के लोगों का कब्ज़ा था।
- भारत सरकार सरकारी नौकरियों को चार समूहों में वर्गीकृत करती है। ग्रुप ए की नौकरियाँ सरकार में सबसे वरिष्ठ, उच्च वेतन वाले पद हैं, जबकि ग्रुप डी सबसे कनिष्ठ, सबसे कम भुगतान वाले पद हैं। ग्रुप डी की नौकरियों में, निम्नतम जाति के वर्गीकृत लोगों द्वारा रखे गए पदों का प्रतिशत उनके जनसांख्यिकीय प्रतिशत से 30% अधिक है। समूह सी पदों के रूप में वर्गीकृत सभी नौकरियों में, सबसे निचली जाति के लोगों द्वारा आयोजित नौकरियों का प्रतिशत उनके जनसांख्यिकीय जनसंख्या वितरण के समान है। समूह ए और बी की नौकरियों में, निम्नतम जाति वर्गीकृत लोगों द्वारा रखे गए पदों का प्रतिशत उनके जनसांख्यिकीय प्रतिशत से 30% कम है।^[240]
- भारत में सबसे अधिक भुगतान वाली, सबसे वरिष्ठ पद वाली नौकरियों में सबसे निचली जाति के लोगों की उपस्थिति दस गुना बढ़ गई है, जो 1959 में सभी नौकरियों में 1.18 प्रतिशत से बढ़कर 1995 में सभी नौकरियों में 10.12 प्रतिशत हो गई है।

भारत सरकार आधिकारिक तौर पर भारत के ऐतिहासिक रूप से भेदभाव वाले समुदायों जैसे कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के पदनाम के तहत अछूतों और कुछ आर्थिक रूप से पिछड़ी शूद्र जातियों को अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में मान्यता देती है।^[212] समकालीन साहित्य में अनुसूचित जाति को कभी-कभी दलित के रूप में संदर्भित किया जाता है। 2001 में, भारत की कुल आबादी में दलित 16.2 प्रतिशत थे।^[242] अनुमान है कि भारत में एक अरब हिंदुओं में हिंदू अगड़ी जाति 26%, अन्य पिछड़ा वर्ग 43%, हिंदू अनुसूचित जाति (दलित) 22% और हिंदू अनुसूचित जनजाति (आदिवासी) 9% शामिल हैं।^[243]

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए सकारात्मक कार्रवाई करने के अलावा, भारत ने गरीब, पिछड़ी जाति के लोगों को अपनी आर्थिक और सामाजिक मुख्यधारा में शामिल करने के अपने प्रयास का विस्तार किया है। 1990 में मंडल आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर पिछड़ा वर्ग के लिए सरकारी आरक्षण 27% था। तब से, भारत ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (एसईबीसी) के लिए सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमों और एजेंसियों में 27 प्रतिशत नौकरी के अवसर आरक्षित किए हैं। 27 प्रतिशत आरक्षण पिछले 50 वर्षों से भारत की सबसे निचली जातियों के लिए निर्धारित 22.5 प्रतिशत के अतिरिक्त है।^[244]

2008 के एक अध्ययन में, देसाई एट अल। भारत की सबसे निचली जाति और जनजातीय आबादी के 6-29 आयु वर्ग के बच्चों और युवा वयस्कों की शिक्षा प्राप्ति पर ध्यान केंद्रित किया गया। उन्होंने 1983 और 2000 के बीच चार सर्वेक्षण वर्षों में से प्रत्येक के लिए 100,000 से अधिक घरों का एक राष्ट्रीय सर्वेक्षण पूरा किया।^[251] उन्होंने पाया कि निचली जाति के बच्चों में प्राथमिक विद्यालय पूरा करने की संभावना में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मध्य, उच्च या कॉलेज स्तर की शिक्षा पूरी करने वाले दलित बच्चों की संख्या राष्ट्रीय औसत की तुलना में तीन गुना तेजी से बढ़ी, और निचली और ऊँची दोनों जातियों के लिए कुल संख्या सांख्यिकीय रूप से समान थी। हालाँकि, उसी अध्ययन में पाया गया कि 2000 में, कभी स्कूल में दाखिला न लेने वाले दलित पुरुषों का प्रतिशत अभी भी स्कूलों में दाखिला न लेने वाले उच्च जाति के पुरुषों के प्रतिशत से दोगुने से भी अधिक था। इसके अलावा, उच्च जाति की 9.09% महिलाओं की तुलना में केवल 1.67% दलित महिलाएँ कॉलेज स्नातक थीं। भारत में स्कूल जाने वाली दलित लड़कियों की संख्या इसी अवधि में दोगुनी हो गई, लेकिन फिर भी राष्ट्रीय औसत से कम थी। भारत में अन्य गरीब जाति समूहों के साथ-साथ मुसलमानों जैसे जातीय समूहों ने भी 16 साल की अवधि में सुधार किया है, लेकिन उनका सुधार दलितों और आदिवासियों से पीछे रह गया। 1999 में दलितों और मुसलमानों के लिए स्कूल उपलब्धि का शुद्ध प्रतिशत सांख्यिकीय रूप से समान था।



विश्व बैंक द्वारा 2007 में भारत के राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण में पाया गया कि ऐतिहासिक रूप से भेदभाव वाली जातियों के 80 प्रतिशत से अधिक बच्चे स्कूलों में जा रहे थे। दलित समुदाय के बच्चों की स्कूल उपस्थिति में सबसे तेज़ वृद्धि भारत की आर्थिक वृद्धि के हालिया दौर में हुई।^[252]

दर्शन सिंह का एक अध्ययन भारत की ऐतिहासिक रूप से भेदभाव वाली जातियों में स्वास्थ्य और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के अन्य संकेतकों पर डेटा प्रस्तुत करता है। उनका दावा है:^[253]

- 2001 में, भारत की सबसे निचली जातियों में साक्षरता दर 55 प्रतिशत थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 63 प्रतिशत था।
- भारत की सबसे निचली जातियों में बचपन में टीकाकरण का स्तर 2001 में 40 प्रतिशत था, जबकि राष्ट्रीय औसत 44 प्रतिशत था।
- भारत की सबसे निचली जातियों में घर के भीतर या घर के पास पीने के पानी की पहुंच 2001 में 80 प्रतिशत थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 83 प्रतिशत था।
- 1995 और 2005 के बीच भारत की सबसे निचली जातियों में गरीबी का स्तर 49 प्रतिशत से गिरकर 39 प्रतिशत हो गया, जबकि राष्ट्रीय औसत परिवर्तन 35 से 27 प्रतिशत हो गया।

आधुनिक भारत में विभिन्न जाति समूहों की जीवन प्रत्याशा बढ़ा दी गई है; लेकिन इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज की रिपोर्ट बताती है कि आधुनिक भारत में जीवन प्रत्याशा में बड़ा अंतर जाति नहीं, बल्कि गरीबी है।

परिणाम

भारत में कई राजनीतिक दल जाति-आधारित वोटबैंक की राजनीति में शामिल हो गए हैं। बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी), समाजवादी पार्टी और जनता दल जैसी पार्टियां दावा करती हैं कि वे पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, और चुनाव जीतने के लिए अक्सर दलित और मुस्लिम समर्थन के साथ गठबंधन में ओबीसी समर्थन पर भरोसा करते हैं।^[298] दूसरी ओर, हिंदू दक्षिणपंथ ने भी कई बार अपनी जाति-आधारित अपीलों पर विवाद खड़ा किया है, उदाहरण के लिए 2020 में जब भाजपा सांसद (संसद सदस्य) प्रज्ञा सिंह ठाकुर शूद्रों के बारे में की गई टिप्पणियों के लिए निशाने पर आ गईं। 'क्षत्रिय महासभा' नामक एक जाति निकाय को एक संबोधन।^[299]

1995 के एक अध्ययन में कहा गया है कि भारत में जाति व्यवस्था अधिक समृद्ध उच्च-रैंकिंग समूहों द्वारा गरीब निम्न-रैंकिंग समूहों के शोषण की एक प्रणाली है।^[208] 2001 में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में 36.3% लोगों के पास बिल्कुल भी ज़मीन नहीं है, 60.6% लोगों के पास लगभग 15% ज़मीन है, बहुत अमीर 3.1% लोगों के पास 15% ज़मीन है।^[209] हक ने यह भी बताया कि 90 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति (निम्न-रैंकिंग समूह) और अन्य सभी जातियां (उच्च-रैंकिंग समूह) के पास या तो ज़मीन नहीं है या भूमि क्षेत्र प्रति वर्ष 1000 डॉलर से कम भोजन पैदा करने में सक्षम है और प्रति परिवार आय. हालाँकि, भारत के 99 प्रतिशत से अधिक खेत 10 हेक्टेयर से कम हैं, और 99.9 प्रतिशत खेत 20 हेक्टेयर से कम हैं, चाहे किसान या भूस्वामी की जाति कुछ भी हो। इसके अलावा, भारत सरकार ने कृषि भूमि सीमा कानूनों को सख्ती से आगे बढ़ाया है जो किसी को भी अनिवार्य सीमा से अधिक भूमि का मालिक होने से रोकता है। भारत ने इस कानून का उपयोग कुछ लोगों से जबरन भूमि अधिग्रहण करने, फिर भूमिहीनों और निचली जाति के गरीबों को लाखों एकड़ ज़मीन पुनर्वितरित करने के लिए किया है। हक का सुझाव है कि भारतीय सांसदों को देश के भूमि कानूनों में सुधार और आधुनिकीकरण करने की जरूरत है और भूमि सीमा और किरायेदारी सुधार के अंधाधुनक पर कम भरोसा करना चाहिए।^{[300] [301]}

2011 के एक अध्ययन में, अय्यर ने भी कहा कि 1950 और 1990 के बीच भारत के भीतर आर्थिक शोषण और परिणामी भूमि पुनर्वितरण के ऐसे गुणात्मक सिद्धांतों का जीवन की गुणवत्ता और गरीबी में कमी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसके बजाय, 1990 के दशक के बाद से आर्थिक सुधारों और गैर-कृषि नौकरियों के परिणामस्वरूप अवसरों ने गरीबी को कम किया है और भारतीय समाज के सभी वर्गों के लिए प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है।^[302] विशिष्ट साक्ष्य के लिए, अय्यर निम्नलिखित का उल्लेख करते हैं



आलोचकों का मानना है कि आर्थिक उदारीकरण से केवल एक छोटे से अभिजात वर्ग को लाभ हुआ है और गरीबों, विशेषकर दलितों की सबसे निचली हिंदू जाति को पीछे छोड़ दिया गया है। लेकिन एक हालिया आधिकारिक सर्वेक्षण से पता चला कि पिछले दो दशकों में दलितों के जीवन स्तर में आश्चर्यजनक सुधार हुआ है। टेलीविजन स्वामित्व शून्य से 45 प्रतिशत तक बढ़ गया था; सेलफोन स्वामित्व शून्य से 36 प्रतिशत तक बढ़ा; दोपहिया वाहन स्वामित्व (मोटरसाइकिल, स्कूटर, मोपेड का) शून्य से 12.3 प्रतिशत तक; कल का बचा हुआ खाना खाने वाले बच्चों की संख्या 95.9 प्रतिशत से घटकर 16.2 प्रतिशत हो गई... अपना व्यवसाय चलाने वाले दलित 6 प्रतिशत से बढ़कर 37 प्रतिशत हो गए; और कृषि मजदूरों के रूप में काम करने वालों का अनुपात 46.1 प्रतिशत से घटकर 20.5 प्रतिशत हो गया है।

कैसन ने भारत के दलित समुदाय के दो हिस्सों में अंतर प्रभाव का अध्ययन किया है। उनका मानना है कि भारत की समग्र आर्थिक वृद्धि ने सबसे तेज़ और अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाए हैं। कैसन ने आगे निष्कर्ष निकाला कि कानूनी और सामाजिक कार्यक्रम की पहल अब भारत की ऐतिहासिक रूप से भेदभाव वाली जातियों को आगे बढ़ाने में भारत की प्राथमिक बाधा नहीं है; भारत की आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ ग्रामीण और शहरी भारत में गुणवत्तापूर्ण स्कूलों की आपूर्ति में सुधार से और प्रगति होने की संभावना है।^[303]

भारत में दलितों के साथ दुर्व्यवहार को आनंद तेलतुम्बडे, गोपाल गुरु और अन्य लोगों ने "भारत का छिपा हुआ रंगभेद" बताया है।^{[210] [304] [305]} आरोपों के आलोचक स्वतंत्रता के बाद के भारत में दलितों की स्थिति में पर्याप्त सुधार की ओर इशारा करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप भारत के संविधान में निहित अधिकारों और विशेषाधिकारों का कड़ाई से कार्यान्वयन किया गया है, जैसा कि संरक्षण द्वारा लागू किया गया है। नागरिक अधिकार अधिनियम, 1955 के।^[306] उनका यह भी तर्क है कि शहरी सार्वजनिक जीवन में यह प्रथा गायब हो गई है।^[307]

नवीन भारती, दीपक मालघन और अंदलीब रहमान के हालिया शोध में पाया गया कि "कर्नाटक में अंतर-ग्राम अलगाव की सीमा अमेरिकी दक्षिण में स्थानीय काले-सफेद अलगाव से अधिक है जो आज भी आवासीय पैटर्न को प्रभावित कर रही है।" उनका दावा है कि यह निष्कर्ष पिछले नुवंशविज्ञान अनुसंधान से सहमत है जिसमें पाया गया कि ग्रामीण भारत में आवासीय स्थान जाति के आधार पर अलग किया गया है।^{[308] [309] [310]}

समाजशास्त्री केविन रीली, स्टीफन कॉफ़मैन और एंजेलो बोडिनो, जाति व्यवस्था की आलोचना करते हुए, निष्कर्ष निकालते हैं कि आधुनिक भारत में रंगभेद का अभ्यास नहीं होता है क्योंकि यहाँ कोई राज्य-स्वीकृत भेदभाव नहीं है।^[311] वे लिखते हैं कि भारत में जातिवाद वर्तमान में "रंगभेद नहीं है। वास्तव में, अछूत, साथ ही आदिवासी लोग और भारत में सबसे निचली जातियों के सदस्य व्यापक सकारात्मक कार्रवाई कार्यक्रमों से लाभान्वित होते हैं और अधिक राजनीतिक शक्ति का आनंद ले रहे हैं।"^[312]

एक परिकल्पना कि जाति नस्ल के बराबर है, कुछ विद्वानों द्वारा खारिज कर दी गई है।^{[313] [314] [315]} उदाहरण के लिए, अंबेडकर ने लिखा है कि "पंजाब का ब्राह्मण नस्लीय रूप से पंजाब के चमार के समान है। जाति व्यवस्था नस्लीय विभाजन का सीमांकन नहीं करती है। जाति व्यवस्था एक सामाजिक विभाजन है एक ही जाति के लोग।"^[316] विभिन्न समाजशास्त्रियों, मानवविज्ञानियों और इतिहासकारों ने नस्लीय उत्पत्ति और जाति के नस्लीय जोर को खारिज कर दिया है और इस विचार को पूरी तरह से राजनीतिक और आर्थिक अर्थ वाला विचार मानते हैं। बेटेइल लिखते हैं कि "भारत की अनुसूचित जातियाँ ब्राह्मणों को मिलाकर एक जाति से अधिक कुछ नहीं हैं। प्रत्येक सामाजिक समूह को केवल इसलिए एक जाति नहीं माना जा सकता क्योंकि हम इसे पूर्वाग्रह और भेदभाव से बचाना चाहते हैं",^[315] और वह संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित नस्लवाद पर 2001 का डरबन सम्मेलन "स्थापित वैज्ञानिक राय से मुंह मोड़ रहा है"।

निष्कर्ष

जाति प्रथा का विनाश (अंग्रेजी : Annihilation of Caste) डॉ॰ भीमराव अंबेडकर द्वारा लिखे गये श्रेष्ठतम एवं प्रसिद्ध ग्रन्थों में एक है। इसका प्रकाशन वर्ष 1936 में हुआ। इसमें तत्कालीन जाति व्यवस्था का घोर विरोध किया एवं उस समय के धार्मिक नेताओं का भी विरोध किया गया। यह एक ऐसा भाषण है जिसको सार्वजनिक रूप से पढ़ने का मौका उन्हें नहीं मिला।^[1]



भाषण लाहौर के जात पात तोड़क मंडल की और से उनकी वार्षिक कान्फ्रेंस में उनको मुख्य भाषण करने के लिए न्यौता मिलने के बाद लिखा गया था।^[2] जब डाक्टर साहब ने अपने प्रस्तावित भाषण को लिखकर भेजा तो ब्राह्मणों के प्रभुत्व वाले जात-पात तोड़क मंडल के कर्तार्थता, काफी बहस के बाद भी यह भाषण सुनने को तैयार नहीं हुए। शर्त लगा दी कि भाषण में आयोजकों की मर्जी के हिसाब से बदलाव किया जाए। आम्बेडकर ने भाषण बदलने से मना कर दिया और उस सामग्री को पुस्तक के रूप में मई 1936 को खुद छपवा दिया।^[3]

संदर्भ

1. डी ज़्वार्ट (2000) ।
2. ^ ए बी बेली (2001) , पीपी. 25-27, 392।
3. ^ सेंट जॉन (2012) , पृ. 103.
4. ^ ए बी सथाये (2015) , पृ. 214.
5. ^ "भारत की जाति व्यवस्था क्या है?" . बीबीसी समाचार । 25 फरवरी 2016 । 27 मई 2017 को लिया गया . स्वतंत्र भारत के संविधान ने जाति के आधार पर भेदभाव पर प्रतिबंध लगा दिया, और ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने और पारंपरिक रूप से वंचितों को समान अवसर प्रदान करने के प्रयास में, अधिकारियों ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में सबसे कम कोटा की घोषणा की। 1950 में जाति पदानुक्रम।
6. ^ ए बी बेली (2001) , पृ. 392.
7. ^ ए बी बेली (2001) , पीपी 26-27: इस दो-चरण अनुक्रम के प्रारंभिक चरण में जो हुआ वह शाही व्यक्ति के पराक्रम का उदय था। इस अवधि में, राजा और पुजारी और तपस्वी दोनों, जिनके साथ शक्तिशाली लोग अपने शासन को जोड़ने में सक्षम थे, जाति आदर्श के मार्शल और शाही रूप की पुष्टि के लिए एक बढ़ता हुआ केंद्र बन गए। (...) इस अवधि की अन्य प्रमुख विशेषता भक्ति आस्था के कई स्पष्ट रूप से जातिविहीन रूपों को एक ऐसी दिशा में फिर से आकार देना था जिसने रैंक और समुदाय के इन भेदभावों को और अधिक पुष्टि दी।
8. ^ नेहरू, जवाहरलाल (2004)। भारत की खोज . नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स। आईएसबीएन 0-670-05801-7. ओसीएलसी 57764885 ।
9. ^ ए बी डवर्स (2001बी) , पीपी 215-229।
10. ^ गुहा, सुमित. "जाति का जन्म"। जाति से परे . स्थायी काला. पृ. 38-39. आईएसबीएन 978-81-7824-513-3.
11. ^ "'मैं स्कूल में अन्य लड़कियों को बताऊंगी कि मैं ब्राह्मण हूँ': भारत की जाति व्यवस्था को चुनौती देने का संघर्ष। एबीसी न्यूज । 27 जून 2021।
12. ^ "भारत की जाति व्यवस्था क्या है?" . बीबीसी समाचार । 25 फरवरी 2016 । 27 मई 2017 को लिया गया . स्वतंत्र भारत के संविधान ने जाति के आधार पर भेदभाव पर प्रतिबंध लगा दिया, और ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने और पारंपरिक रूप से वंचितों को समान अवसर प्रदान करने के प्रयास में, अधिकारियों ने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में सबसे कम कोटा की घोषणा की। 1950 में जाति पदानुक्रम।
13. ^ "भारत की जाति व्यवस्था क्या है?" . बीबीसी समाचार । 19 जून 2019.
14. ^ लेविन, सारा (2009)। बौद्ध धर्म का पुनर्निर्माण: बीसवीं सदी के नेपाल में थेरवाद आंदोलन । हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पी। 21. आईएसबीएन 978-0-674-02554-7.
15. ^ ए बी कोहेन (2001) , पृ. 21.
16. ^ डवर्स (2001ए) , पृ. 3.
17. ^ ओमवेट, गेल (2014)। भारत में बौद्ध धर्म: ब्राह्मणवाद और जाति को चुनौती । ऋषि क्लासिक्स. पी। 252. आईएसबीएन 978-81-321-1028-6.



18. ^ जेफ्री रॉबिन्सन (1995)। स्वर्ग का स्याह पक्ष: बाली में राजनीतिक हिंसा। कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस। पी। 32. आईएसबीएन 0-8014-8172-4.
19. ^ डोनिगर, वेंडी (1999)। मरियम-वेबस्टर का विश्व धर्मों का विश्वकोश। स्पिंगफील्ड, एमए: मरियम-वेबस्टर। पी। 186. आईएसबीएन 978-0-87779-044-0.
20. ^ स्टैटन, एंड्रिया (2012)। मध्य पूर्व, एशिया और अफ्रीका के सांस्कृतिक समाजशास्त्र का एक विश्वकोश। यूएस: सेज प्रकाशन। पृ. 12-13. आईएसबीएन 978-1-4129-8176-7.
21. ^ ए बी सी डी बाशम, वंडर दैट वाज़ इंडिया (1954), पृ. 148.
22. ^ फाउलर, हिंदू धर्म (1997), पीपी. 19-20।
23. ^ ए बी सी बेली (2001), पृ. 9.
24. ^ ए बी सी फाउलर, हिंदू धर्म (1997), पृ. 23.
25. ^ हैरिंगटन, ऑस्टिन (2006)। सामाजिक सिद्धांत का विश्वकोश। रूटलेज। पी। 49. आईएसबीएन 978-0-415-29046-3.
26. ^ डर्क्स (2001ए), पीपी. 57-60।
27. ^ सैमुअल, योग और तंत्र की उत्पत्ति (2008), पीपी. 87-88।
28. ^ बेली (2001), पृ. 10.
29. ^ सैमुअल, योग और तंत्र की उत्पत्ति (2008), पी। 87.
30. ^ इंगोल्ड, टिम (1994)। मानव विज्ञान का सहयोगी विश्वकोश। रूटलेज। पीपी. 1026-1027. आईएसबीएन 978-0-415-28604-6.
31. ^ "जाति, एन।" ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी। 1989.
32. ^ कॉर्ब्रिज, हैरिस और जेफरी (2013), पी। 239.
33. ^ ए बी ऊपर जायें: घुर्ये (1969), पीपी. 1-2.
34. ^ घुर्ये (1969), पृ. 2-22.
35. ^ घुर्ये (1969), पृ. 2-5.
36. ^ घुर्ये (1969), पीपी. 6-7.
37. ^ घुर्ये (1969), पृ. 7-10.
38. ^ घुर्ये (1969), पीपी 10-15।
39. ^ घुर्ये (1969), पृ. 11-12.
40. ^ घुर्ये (1969), पृ. 15-16.
41. ^ घुर्ये (1969), पृ. 16-17.
42. ^ घुर्ये (1969), पृ. 18-19.
43. ^ घुर्ये (1969), पृ. 22.



INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT



+91 99405 72462



+91 63819 07438



ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com